संस्कृत गद्य साहित्य का विकास

–एखलाक उद्दीन खान एवं डॉ. सीमा सिंह*
शोधच्छात्र : संस्कृत, वी.ब. सिंह पूर्वांचल वि.वि. जौनपुर (उ.प्र.)
*असि. प्रोफे. एवं विभागाध्यक्ष : संस्कृत
राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ.प्र.)

वैदिककाल से आरम्भ कर मध्यकाल तक गद्य के विकसित होने का इतिहास बड़ा ही मनोरम है। गद्य के दो प्रकार के रूप मिलते हैं– वैदिककाल का सीधा–सादा बोलचाल का गद्य तथा लौकिक संस्कृत का प्रौढ़, समासबहुल गाढबन्धवाला गद्य। दोनों प्रकार के गद्यों में अपना विशिष्ट सौन्दर्य तथा मोहकता है। वैदिक गद्य में सीधे–सादे, छोटे–छोटे शब्दों का हम प्रयोग पाते हैं। 'ह' व 'उ' अव्यय वाक्यालंकार के रूप में प्रयुक्त हें। इनके प्रयोग से वाक्य में रोचकता तथा सुन्दरता का समावेश हो जाता है। समास की विशेष कमी है। उदाहरणों का बहुल प्रयोग है। उपमा तथा रूपक का कमनीय सन्निवेश वैदिक गद्य को विदग्धों की दृष्टि से हृदयावर्जक बनाये हुए है। इस कथन की पुष्टि में कालक्रम से गद्य का निरीक्षण आवश्यक होगा।

यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छ्रणोति नान्यद् विजानाति तद् भूमा। अथ यत्रान्यत् पश्यति अन्यच्छ्रणोति अन्यद् विजानाति तदल्यं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।।[1]

वैदिक गद्य तथा लौकिक संस्कृत के गद्य को मध्य में मिलाने का काम पौराणिक गद्य करता है। यह गद्य नितान्त आलङ्कारिक तथा प्रासादिक है। श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण का गद्य इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसमें साहित्यिक गद्य का समग्र सौन्दर्य विद्यमान है। उसमें विशेष गाढबन्धता की कमी अवश्य है, परन्तु भागवत का गद्य तो नितान्त प्रौढ़ अलङ्कृत तथा भावाभिव्यञ्जक है।

यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपमुं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम्।।[2]

संस्कृत में गद्यात्मक कथाओं का उदय विक्रम से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुआ था।[3] कात्यायन ने अपने वार्तिक– आख्यानाख्यायिकेतिहास–पुराणेभ्यश्च सूत्र 4/2/60 में आख्यान और आख्यायिका का उल्लेख अलग–अलग किया है। इन दोनों में स्वरूपतः भिन्नता का परिचय नहीं मिलता, परन्तु कोई भेद अवश्यमेव उस युग में विद्यमान है। पतञ्जलि ने 'यवक्रीत', 'प्रियङ्गु' तथा 'ययाति' का आख्यान के उदाहरण में तथा 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी' का आख्यायिका के उदाहरण में नाम निर्देश किया है।

(1) सुबन्धु– गद्य–काव्य के लेखकों में सुबन्धु ही सर्वप्रथम लेखक हैं जिनका ग्रन्थ अलंकृत शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके समय तथा स्थान का यथार्थ परिचय अभी तक हमें नहीं चलता। बाणभट्ट के द्वारा प्रशंसित किये जाने के कारण ये बाण में पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इन्होंने एक श्लोक के द्वारा न्यायवार्तिक के रचयिता प्रसिद्ध नैयायिक उद्योगकर का स्पष्टः संकेत किया है– न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्। उद्योतकर का समय षष्ठ शताब्दी का अन्त तथा सप्तम का आदि माना जाता है। बाण से पूर्ववर्ती होने के कारण

सुबन्धु का समय 600 ई. के आस–पास जान पड़ता है।[4] फलतः गद्यकाव्यों के इन महनीय लेखकत्रयी का समयक्रम इस प्रकार है– सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी।

सुबन्धु ने अपने ग्रन्थ में जिस विक्रमादित्य के कीर्तिशेष होने का उल्लेख बड़ी सौन्दर्यमयी भाषा में किया है–

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्काः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।[5]

इनका एक ही ग्रन्थ है जो वासवदत्ता के नाम से प्रसिद्ध है।[6] सुबन्धु की इस वासवदत्ता का सम्बन्ध प्राचीन भारत की प्रसिद्ध आख्यायिका वासवदत्ता तथा उदयन की प्रणयकहानी से कुछ भी नहीं है। यह पूरा कथानक कवि के मस्तिष्क की उपज है। केवल नायिका का अभिधान प्राचीन है। वासवदत्ता की कल्पनाओं का प्रभाव पिछले कवियों पर भी पड़ा था। विरह दुःखों की अवर्णनीयता की यह अभिव्यञ्जना महिम्नःस्तोत्र के एक प्रसिद्ध पद्य की जननी है।

''त्वत्कृते याऽनया यातनाऽनुभूता सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युग सहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा।।''[7]

(2) बाणभट्ट– हर्षचरित के आरम्भिक उच्छ्वासों में बाण का आत्मवृत्त वर्णित है। उसके आधार पर उनके असामान्य व्यक्तित्व का एक रमणीय चित्र हमारे सामने प्रस्तुत हे। बाणभट्ट के पूर्वज सोननद पर प्रीतिकूट नामक नगर में निवास करते थे। वह स्थान सम्भवतः बिहार प्रान्त के पश्चिमी भाग में था। बाण का कुल प्राचीनकाल से ही धर्म तथा विद्या के लिए प्रख्यात था। इनका जन्म वात्स्यायन गोत्र में हुआ था। बाण के एक प्राचीन पूर्वज का नाम 'कुबेर' था। इनके घर पर वेदाध्ययन के लिए विद्यार्थियों का जमघट लगा रहता था। बाण ने तो कादम्बरी में यहाँ तक लिखा है कि उनके घर पर ब्रह्मचारी लोग शंकित होकर यजुर्वेद पढ़ते तथा सामवेद गाया करते थे, क्योंकि सब वेदों का अभ्यास करने वाले, मैनाओं के साथ–साथ पिंजड़ों में बैठे हुए, तोते उनको पद–पद पर टोका करते थे।

जगुर्ग्रहेऽभ्यस्तवाङ्मयैः संसारिकैः पंजरवर्तिभिः शुकैः।
निग्रह्यमाणा वटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः।।[8]

कुबेर के चार पुत्रों में पशुपति सबसे छोटे थे। उनके पुत्र अर्थपति हुए। अर्थपति से चित्रभानु उत्पन्न हुए। यह भी सकलशास्त्र में पण्डित थे। उन्होंने यज्ञधूम से उत्पन्न हुई कीर्ति को सकल दिगन्तों में फैलाया। इन्हीं चित्रभानु से बाणभट्ट का जन्म हुआ। थोड़ी ही उम्र में बाण के माता तथा पिता उन्हें अनाथ बनाकर इस आसार संसार से चल बसे। बाणभट्ट के पास पैतृक सम्पत्ति बहुत थी। किसी सुयोग्य अभिभावक के न होने से बाणभट्ट घुमक्कड़ निकल गये। बुरी संगति के साथ वह आखेट आदि दुव्यर्सनों में लिप्त रहे। उसे देशाटन का बड़ा शौक था। कुछ साथियों के साथ वह देशाटन को निकला। बुद्धि–विकास, सांसारिक अनुभव तथा उदार विचार कमाकर वह घर लौटा। लोग उसका उपहास करने लगे। अचानक एक दिन हर्ष के चचेरे भाई कृष्ण के एक दूत ने आकर बाण को एक पत्र दिया। पत्र में लिखा था कि श्रीहर्ष से कितने लोगों ने तुम्हारी चुगली खाई है, राजा तुमसे नाराज हो गये हैं। अतएव शीघ्र यहाँ चले आओ। बाण श्रीहर्ष के पास गये। राजा ने पहले तो बाण की अवहेलना की, परन्तु पीछे उनकी विद्वता पर प्रसन्न होकर बाण को आश्रयदान दिया। बाण ने बहुत दिनों तक हर्ष की सभा को सुशोभित किया। अनन्तर अपने घर लौट आये और लोगों ने हर्ष का चरित पूछने पर बाण ने

'हर्षचरित' की रचना की।

(3) दण्डी– अवन्ति–सुन्दरी कथा के आधार पर दण्डी का थोड़ा चरित्र प्राप्त होता है। कविवर भारवि के तीन पुत्र हुए, जिनमें 'मनोरथ' मध्यम पुत्र था। मनोरथ के भी चारों वेदों की भाँति चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें वीरदत्त सबसे छोटा होने पर भी एक सुयोग्य दार्शनिक था। वीरदत्त की स्त्रीका नाम गौरी था। इन्हीं से कवि श्रेष्ठ दण्डी का जन्म हुआ। बचपन में ही इनके माता–पिता का स्वर्गवास हो गया। ये काञ्ची में निराश्रय ही रहते थे। एक बार जब काञ्ची में विप्लव उपस्थित हुआ, तब ये काञ्ची छोड़कर जङ्गलों में इधर–उधर भटकते रहते थे। अनन्तर शहर में शान्ति होने पर ये पल्लव नरेश की सभा में आ गये और वहीं रहने लगे। भारवि और दण्डी के सम्बन्ध के विषय में अब सन्देह होने लगा है। जिस श्लोक के आधार पर भारवि के साथ दण्डीके प्रपितामह दामोदर की एकता मानी जाती थी उस श्लोक में नये पाठ–भेद मिलने से इस मत को बदलना पड़ा है।[9]

पहला पाठ प्रथमान्त भारविः था, अब उसके स्थान पर द्वितीयान्त 'भारवि' मिला है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि भारवि की सहायता से दामोदर की मित्रता विष्णुवर्धन के साथ हो सकी। अतः दामोदर दण्डी के प्रपितामह थे, भारवि नहीं। इस नये पाठ–भेद से दोनों के समय–निरूपण के विषय में किसी तरह का परिवर्तन आवश्यक नहीं है। इस वर्णन से दण्डी के अन्धकारमय जीवन पर प्रकाश की एक गाढ़ी किरण पड़ती है। भारवि का सम्बन्ध उत्तरी भारत से न होकर दक्षिण भारत से था।[10] हिन्दुओं की पवित्र नगरी काञ्ची दण्डी की जन्मभूमि थी। इनका जन्म एक अत्यन्त शिक्षित ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारवि की चौथी पीढ़ी में इनका जन्म हुआ। काञ्ची के पल्लव–नरेशों की छत्रछाया में इन्होंने अपने दिन सुखपूर्वक बिताए थे।[11]

'दशकुमारचरित' दण्डी की रचना में अधिकांश भाग गद्यात्मक ही है। दण्डी की गद्य शैली बड़ी ही सुबोध, सरल तथा प्रवाहमयी है। उनका गद्य न तो श्लेष के बोझ से कहीं दबा हुआ है और न कहीं समास के प्रहार से प्रताड़ित है। उनका गद्य प्रतिदिन के व्यवहार–योग्य, सजीव व चुस्त हे। उनकी प्रासादिकता दण्डी की निजी विशेषता है। ये अपनी भाषा को अलंकारों के आडम्बर से सदा बचाते हें। इसलिए इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, मँजी हुई और मुहावरेदार हे। गद्य के समान न तो यह प्रत्यक्षर–श्लेषमय है और न बाणीय गद्य के सदृश यह समासों से लदी हुई तथा गाढ़बन्धता से मण्डित है। तथ्य यह है कि गद्य के इतिहास में दण्डी का अपना निजी मार्ग है। वे सुबन्धु तथा बाण इन दोनों की शैली की अनुगमन न कर एक नवीन प्रकार की शैली के उद्भावक हैं, जिनके विशेष गुण हें– अर्थ की स्पष्टता, रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, पद का लालित्य तथा दैनन्दिन प्रयोग की क्षमता। 'दण्डिनः पदलालित्यम्' के ऊपर पण्डित समाज को न्यौछावर किये हुए है।[12]

(4) धनपाल– महाकवि बाणभट्ट ने गद्यकाव्य के लिखने में जो पद्धति चलाई उसका अनुकरण परवर्ती कवियों ने बड़े अभिनिवेश के साथ किया। धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' ऐसे ही अनुकरण का श्लाघनीय प्रयास है। ये काश्यपगोत्रीय जैन थे और भोजराज के पितृव्य मुञ्जराज के सभासद थे। इनकी 'तिलकमञ्जरी' की भाषा बड़ी ओजस्विनी तथा प्रभावशालिनी है। अपनी गद्य रचना 'तिलकमञ्जरी' की प्रस्तावना में इन्होंने आत्म परिचय दिया है।[13]

संस्कृत गद्यकाव्य के लेखकों में धनपाल की कीर्ति आज भी अक्षुण्ण है। जिस गद्य शैली को बाण ने अपनी मनोरम कादम्बरी के द्वारा प्रशस्त किया तथा जिसे दण्डी ने अपने

सरस–सुभग दशकुमारचरित के द्वारा उज्ज्वल बनाया, उसे ही धनपाल ने अपनी सुन्दर 'तिलकमञ्जरी' के द्वारा चमत्कृत किया। 'प्रबन्ध–चिन्तामणि' में इनका जीवनवृत्त विस्तार के साथ दिया गया है जिससे हम इनके ऐतिहासिक वृत्त से पर्याप्त परिचय पाते हैं। उज्जयिनी के काश्यपगोत्रीय सर्वदेव नामक विद्वान् ब्राह्मण के ये पुत्र थे। ये दो भाई थे। इनके अनुज 'शोभन' इनसे पूव्र ही जैनधर्म की दीक्षा ली। इस दीक्षाग्रहण की कथा भी विचित्रता से भरी है। एक बार इनके पिता ने श्रीवर्धमानसूरि नामक किसी जैन मुनि से अपने घर में संचित निधि का पता पूछा और अपनी आधी निधि देना स्वीकार किया। निधि की प्राप्ति हो जाने पर मुनि जी ने दोनों पुत्रों में से एक को जैनधर्म में दीक्षित करने के लिए माँगा। ब्राह्मण धर्म के अभिमानी होने से धर्मपाल ने जैनी दीक्षा लेने से अपनी असम्मति प्रकट की। अगत्या इनके अनुज शोभन जैनधर्म में दीक्षित होकर जैनमुनि के रूप में जीवनयापन करने लगे। इन्हीं के उपदेश से धनपाल ने भी जैनधर्म को ग्रहण किया और इस मत में एक विशिष्ट विद्वान् तथा कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। मुञ्ज महीपति ने इनकी काव्यकला से प्रसन्न होकर इन्हें 'सरस्वती' की उपाधि दे दी, जिसका उल्लेख धनपाल ने अपने गद्यकाव्य 'तिलकमञ्जरी' के उपोद्धात में किया है।[14]

भोजराज के दरबार में भी इनकी भूयसी प्रतिष्ठा थी और इन्हीं के प्रोत्साहन से धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी' नामक गद्य का प्रणयन किया जो इनकी काव्यकला का चरम निदर्शन तथा इनकी कीर्ति का एकमात्र आधार है।

(5) वादीभसिंह– वादीभसिंह का 'गद्यचिन्तामणि' अलंकृत शैली में लिखा गया एक रोचक गद्यकाव्य है। इसमें जिनसेन के 'महापुराण' में वर्णित जीवन्धर की कथा का वर्णन 11 लम्भों में किया गया है। वादीभ ने भी इसी कथा को अनुष्टुप् जैसे सरल छन्द में लिखकर 'क्षत्रचूणामणि' का निर्माण किया। इनका समय एकादशशती में माना जाता है। इनका गद्य पर्याप्त रूप से रोचक तथा हृदयावर्जक है।

(6) विश्वेश्वर पाण्डेय– विश्वेश्वर पाण्डेय की 'मन्दारमंजरी' कादम्बरी की शैली में निबद्ध गद्यकाव्य का एक मनोरम रूप प्रस्तुत करती है। विश्वेश्वर पाण्डेय अलमोड़ा जिले के पाटिया ग्राम कें निवासी भारद्वाज–गोत्रीय पर्वतीय ब्राह्मण थे। इनके पूज्य पिता लक्ष्मीधर वृद्धावस्था में काशी आये और भगवान् भूतभावन विश्वनाथ की अलौकिक कृपा से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जो उन्हीं के नाम पर 'विश्वेश्वर' नाम्ना प्रसिद्ध हुआ। इनकी रचनाएँ नानाशास्त्रों से सम्बद्ध होकर इनकी तत्तत् शास्त्रों के वैदुष्य की प्रतिपादिका है।[15]

'वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि'' पाणिनीय व्याकरण का नितान्त प्रौढ़ तथा विस्तृत ग्रन्थ है, जिसमें अष्टाध्यायी की विशद् व्याख्या प्रस्तुत की गयी हे। ''अलंकारकौस्तुभ'' इनके अलंकारशास्त्रीय प्रौढ़ पाण्डित्य का सुभग प्रतिपादक ग्रन्थ है। रसचन्द्रिका, अलंकारप्रदीप, अलंकारमुक्तावली, कवीन्द्र–कण्ठाभरण अलंकारशास्त्र से सम्बद्ध लक्षण ग्रन्थ छोटे परन्तु उपयोगी हैं। काव्य ग्रन्थों में रोमावलीशतक तथा आर्यासप्तशती काव्यसौष्ठव की दृष्टि से रमणीय तथा आवर्जक है।

(7) अम्बिकादत्त व्यास–संस्कृत भाषा के आधुनिक साहित्यकारों में अम्बिकादत्त व्यास अग्रगण्य हैं। इनमें प्राचीनता और नवीनता दोनों का समन्वय मिलता है। अपने अल्प जीवन–काल तथा प्रायः कष्टमय जीवन–यात्रा के होने पर भी समय और प्रतिभा का सदुपयोग करके इन्होंने हिन्दी–संस्कृत में छोटी–बड़ी 78 पुस्तकें लिखीं जिनमें कुछ अप्रकाशित हैं।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित शिवराजविजय गद्यकाव्य नवीनता से मण्डित हैं।[16]

वर्ण्य विषय हैं छत्रपति शिवाजी के चरित तथा दिग्विजय का वर्णन। ऐतिहासिक विषय के सुचारु निर्वाह के लिए अनेक घटनाओं का वर्णन सुन्दर रीति में यहाँ किया गया है। यह घटनाप्रधान काव्य है जिसमें कवि का आग्रह विशेष वर्णन पर न होकर घटना के वैविध्य पर है। देशभक्ति के उत्थान युग में निर्मित होने से इसमें देशभक्ति के उदात्त भावों कका कमनीय वर्णन है। शिवराज विजय में 12 निःश्वास या अध्याय हैं। शिवजी के वीर चरित्र के सांगोपांग ऐतिहासिक वर्णन से यह मण्डित है। भाषा सरल–सुबोध है। ओजस्विनी अर्थपूर्ण तथा सुबोध होने के अतिरिक्त यथावसर एवं कोमल भी है। घटनायें अधिकांश वास्तविक हैं, कपोल कल्पित नहीं। पूरा काव्य भारतीय राष्ट्रीय भाव से भरा–पूरा है। लिखने की शैली एकदम नवीन है। नवीन शैली में निबद्ध, यह नितान्त लोकप्रिय गद्यकाव्य संस्कृत में ऐतिहासिक उपन्यास कहाने की पूर्ण योग्यता रखता है।

शंकराचार्य के गद्य की सुषमा निराली है। उनके वाक्य सारगर्भित, प्रौढ़ तथा प्रांजल हैं। वाचस्पति मिश्र जैसे विद्वान् ने उन्हें यथार्थतः प्रसन्न–गम्भीर कहा है। उनके गद्य में वीणा की मधुर झंकार सुनाई पड़ती है। साहित्यिक माधुर्य तथा प्रसाद से पेशल यह गद्य संस्कृत भारती का सौन्दर्य है। उनके एक–एक वाक्य पर गद्य के पौधे निछावर किये जा सकते हैं।

''नहि पद्भ्यां पलायितुं पारयमाणो जानुभ्यां रंहितुमर्हति।।''[17]

अर्थात् पैरों से भागने में समर्थ व्यक्ति के लिए घुटनों के बल रेंगना शोभा नहीं देता। आचार्य का गद्य मात्रा में भी अधिक है। ब्रह्मसूत्र, गीता तथा उपनिषदों का भाष्य लिखना विशेष रचना–चातुर्य का द्योतक है।

सन्दर्भ सूची–

1. छान्दोग्य उपनिषद्–7/24
2. विष्णुपुराण–4/13/4
3. आचार्य बलदेव उपाध्याय– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 383
4. आचार्य बलदेव उपाध्याय– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 383
5. सुबन्धु कृत, वासवदत्ता, श्लोक–10
6. सं. शिवराम की व्याख्या के साथ कलकत्ता से प्रकाशित। कृष्णामाचार्य की व्याख्या बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण तथा उपादेय है– श्री रंगम्, 1906
7. सुबन्धु कृत, वासवदत्ता, पृ. 306–307
   ''अर्थात् तुम्हारे लिए इसने जो यातना झेली है, वह यदि आकाश कागज बने, समुद्र दावात बने, ब्रह्मा लिखने वाला हो अथवा सर्पों का राजा कथक का काम करें तक किसी तरह से हजारों युगों में लिखी या कही जा सकती है।''
8. तारिणीश झा– कादम्बरी कथामुखम्, श्लोक सं. 15
9. स मेधावी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवं गिराम्।
   अनुरुध्याकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धनं।। –1/23
10. आचार्य बलदेव उपाध्याय– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 401
11. आचार्य बलदेव उपाध्याय– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 401
12. आचार्य बलदेव उपाध्याय– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 406
13. डॉ. उमाशंकर शर्मा– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 410
14. तज्जन्मा जनकाङ्घ्रिपंकजरजःसेवाप्तविद्यालवो
   विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात् कथाम्।
   अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना
   श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः।। –धनपाल कृत तिलकमंजरी
15. आचार्य बलदेव उपाध्याय– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 490
16. डॉ. उमाशंकर शर्मा– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 415
17. आचार्य बलदेव उपाध्याय– संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 381